

हिंदी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास

वनिता उप्पल

पी0 एच0 डी0 शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

सारांश

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दौर में 'परीक्षा गुरु' और 'भाग्यमती' जैसे उपन्यासों के साथ हिंदी उपन्यास लेखन परम्परा का आगाज माना जाता है। इस विधा के विकास की दृष्टि से प्रेमचन्द काल काफ़ी महत्वपूर्ण रहा, किन्तु अभी तक हिंदी उपन्यास में एक कमी थी—इसमें पात्रों के बाहरी जीवन का चित्रण ही रहता था, उनके मनोभावों और भीतरी उधेड़बुन का चित्रण प्रेमचन्दोत्तर युग की प्रधान प्रवृत्ति बना। हिंदी की मनोवैज्ञानिक कथा-धारा के प्रमुख उपन्यासकार रहे— इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र और अज्ञेय। इनके अलावा देवराज उपाध्याय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, राजेन्द्र यादव, लक्ष्मीनारायण लाल इत्यादि के उपन्यास भी मानव-मनोविज्ञान से ओत-प्रोत दिखाई देते हैं।

मूलशब्द: मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण, हिंदी उपन्यास, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, अज्ञेय

प्रस्तावना

जीवन का गद्यात्मक आख्यान 'उपन्यास' अपने रूप और शिल्प दोनों में ही निरंतर गतिशील रहा है। कभी साधारण प्रेम-कहानी तो कभी जीवन का कटु सत्य, कभी रोमांच से भरपूर तो कभी हृदय-विदारक जीवन गाथा, आधुनिक मानव की जटिल जीवनशैली की प्रस्तुति में उपन्यास को ऐसी अपूर्व सफलता मिली कि इसे आधुनिक जीवन का महाकाव्य तक कहा जाने लगा। उपन्यास लेखन की शुरुआत पहले पश्चिम में हुई, हिंदी में ये विधा काफ़ी अन्तराल के बाद आयी। दरअसल हमारे यहाँ गद्य विधा को बढ़ावा ही भारतेन्दु काल से मिलना शुरू हुआ। श्रद्धाराम फिल्लौरी, लाला श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, रत्नचन्द्र प्लीडर, पं0 गौरीदत्त, ठाकुर जगमोहन सिंह, देवेन्द्रनाथ खत्री जैसे लेखक हिंदी साहित्य जगत पर अवतरित हुए और 'भाग्यवती', 'परीक्षागुरु', 'देवरानी जेठानी की कहानी', 'नूतन बह्मचारी', 'श्यामास्वप्न', 'चन्द्रकांता' आदि हिंदी के आरम्भिक उपन्यास सामने आए।

उपन्यासों के शुरुआती दौर में ये किसी ने भी नहीं सोचा होगा कि साहित्य में इतने बाद में आयी ये विधा एक दिन कविता, नाटक आदि अन्य साहित्यिक विधाओं को पीछे छोड़ती हुई उनसे बहुत आगे निकल जाएगी। शुरुआत में बेशक इसकी गति धीमी रही यानि बहुत ज्यादा उपन्यास देखने को नहीं मिलते और कुछ तो आज तक इस विवाद में फंसे हैं कि उन्हें उपन्यास कहा भी जाए या नहीं। बहरहाल ये एक अलग मुद्दा है, जहाँ तक उपन्यास विधा के विकास की बात है—'प्रेमचन्द युग' इस दृष्टि से काफ़ी महत्वपूर्ण रहा है। इस काल में पहले तो प्रेमचन्द ने ही अपने बेशुमार उपन्यासों से हिंदी कथा जगत को समृद्ध किया, फिर प्रसाद, सियारामशरण गुप्त, चण्डीप्रसाद 'हृदयेश', शिवपूजन सहाय, ऋशभचरण जैन, राधिकारमण प्रसाद सिंह, अवधनारायण आदि के उपन्यासों ने हिंदी कथा-धारा को पुष्पित-पलवित किया। शुरुआत में उपन्यासों का कलेवर हल्का-फुल्का ही होता था, पर प्रेमचन्द के काल से उपन्यासों के वस्तु और शिल्प दोनों ही पक्षों में परिपक्वता साफ़ दिखाई देने लगी। प्रेमचन्दोत्तर युग में तो जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल आदि लेखकों ने हिंदी उपन्यास को एक अलग ही ऊँचाई पर पहुँचा दिया।

प्रेमचन्दोत्तर युग में लेखकों के बदलते दृष्टिकोण के बारे में समालोचक श्री प्रेमभटनागर लिखते हैं—'नए उपन्यासकारों ने विस्तार की अपेक्षा गहराई, परिमाण की अपेक्षा गुण और स्थूलता की अपेक्षा सूक्ष्मता को प्रश्रय दिया।' ¹ ये बिल्कुल सही है कि

प्रेमचन्दोत्तर युग में उस समय के युवा कथाकारों ने वस्तु और शिल्प दोनों ही क्षेत्रों में पुराने ढांचों को तोड़ नए प्रयोग शुरू किए। उदाहरण के लिए अगर प्रेमचन्द युगीन लेखकों का केन्द्र समाज था तो प्रेमचन्दोत्तर युगीन लेखकों का केन्द्र या तो व्यक्ति हो गया या फिर व्यक्ति और समाज का द्वन्द्व। प्रेमचन्द काल में उपन्यास में एक लम्बी-चौड़ी कथा रहा करती थी, पर प्रेमचन्दोत्तर काल में कथा गौण हो गई, इसकी जगह पात्रों की भीतरी उथल-पुथल को दर्शाते शब्द चित्रों से उपन्यास लबालब भरने लगे। इसी तथ्य पर गौर करते हुए प्रेम भटनागर लिखते हैं—'प्रेमचन्दोत्तर युग में कथा का ह्रास हुआ और उपन्यासों ने मनोवैज्ञानिक वस्तुशिल्प को अपनाया। कथा जीवन सरिता से हटकर मनोगति के शिखर की ओर खिसक गई।' ² जाहिर सी बात है जब कथा ही गौण हो गई और चरित्र प्रधान हो गया तो उपन्यास में घटना चक्र से ज्यादा महत्वपूर्ण घटनाओं के प्रति पात्रों का दृष्टिकोण, उनकी प्रतिक्रिया हो जाएगी। 'लेखक अचेतन मन की परतों को उघाड़ने लगे। उपन्यास कला बाह्यात्मकता से मुक्त हो अनुभूति के आत्मनिष्ठ रूप के आधार पर ही अपने स्वरूप का विस्तार पाने लगी।' ³

लेखकों का इस प्रकार मानव-प्रकृति को कथा का आधार बनाना आधारहीन नहीं था। दरअसल अपने शुरुआती दौर से लेकर प्रेमचन्द काल तक कथा-साहित्य में प्रायः व्यक्ति के बाह्य जीवन और परिवेश के चित्रण पर बल दिया जाता रहा, व्यक्ति का बाह्य परिवेश उसके मन को किस प्रकार प्रभावित करता है, फिर व्यक्ति की मनोवृत्ति या उसका निजी व्यक्तित्व उसके परिवेश में क्या बदलाव ला पाता है—इन सब बातों पर शुरुआती लेखकों का ध्यान नहीं गया और शायद बाद के लेखकों का भी नहीं जाता अगर उस समय पाश्चात्य जगत में फ़्रायड, एडलर, युंग के सिद्धांतों की धूम न मची होती। ऐसी बात नहीं कि हिंदी में 'अन्तर्जगत' की यात्रा करते उपन्यास सिर्फ़ फ़्रायड के कारण लिखे गए, पर इतना तो हमें मानना ही पड़ेगा साम्राज्यवाद की राजनीति में फंसे विश्व का ध्यान व्यक्ति के सूक्ष्म जगत की ओर खींचने में फ़्रायड की भूमिका काफ़ी अहम थी। पाश्चात्य फलक पर फ़्रायड के नाम की मची धूम धीरे-धीरे विश्व के अन्य हिस्सों में पहुँची और वैश्विक स्तर पर साहित्यकारों का ध्यान मानव के भीतरी संसार की ओर गया। फ़्रायड का मनोविश्लेषण 'काम-सिद्धांत पर ज़रूरत से ज्यादा बल देने के कारण पूरे विश्व में ही विवादास्पद रहा और सामाजिक बन्धनों में बंधे साहित्यकार फ़्रायड के साथ अपना नाम जुड़ना पसन्द नहीं करते थे, इस वजह से फ़्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत का प्रभाव तो साहित्य पर

सीमित रहा पर 'मानव-प्रकृति' के विविध संघटकों के अन्वेषक के रूप में व्यावहारिक तौर पर 'मनोविज्ञान' को साहित्य में भरपूर प्रश्रय मिला।

खास तौर पर कथा-साहित्य में तो प्रेमचन्दोत्तर युग में 'मनोवैज्ञानिक कथारचना की बड़ी भारी परम्परा देखने को मिली, इस संबंध में डॉ० देवराज की ये टिप्पणी उल्लेखनीय है—“इस शताब्दी के मानव-मनोविज्ञान संबंधी अनुसंधानों ने व्यक्ति के विविध रूपों के अध्ययन, उसकी रचना, संगठन तथा विकास की नीति के निर्धारण तथा उसे प्रभावित करने वाली कल्पनातीत शक्तियों के प्रमाण पुरस्कार निश्चयीकरण द्वारा यदि साहित्य के किसी अंग की समृद्धि के लिये मार्ग प्रशस्त किया है तो वह कथा-साहित्य का है।”⁴ दरअस्त इसकी भी एक वजह है, मानव की भीतरी परतों को जिस विस्तार के साथ कथा-कहानी में उधेड़ा जा सकता है, काव्य में वो विस्तार कलेवर की संक्षिप्तता के कारण संभव नहीं हो पाता। अतः मनोविज्ञान का सर्वाधिक प्रभाव हिंदी कथा-धारा में दिखलाई पड़ना कोई अचरज की बात नहीं मनोविज्ञान के प्रभाव से हिंदी उपन्यासों का वस्तु और शिल्प पूर्ववर्ती उपन्यासों से एकदम अलग हो गया। बाह्य घटनाचक्र गौण हो गया, पात्र संख्या सीमित हो गई, चेतना-प्रवाह पद्धति का इतना अधिक प्रयोग हुआ कि इस कालावधि में रचे उपन्यासों को चेतना- प्रवाह के उपन्यास तक कहा जाने लगा। पहले वर्णनात्मक शैली से लेखक काम चला लेता था, पर अब इस शैली से उसका काम न चल सका और व्यक्ति के भीतर का चित्र खींचने के लिए उसे पूर्व-दीप्ति, स्वप्न-चित्रण और चेतना-प्रवाह पद्धति जैसे शैली रूपों का सहारा लेना पड़ा यानि मनोविज्ञान के कथा-साहित्य में प्रवेश के बाद उपन्यास लेखन का पूरा का पूरा ढांचा ही बदल गया। हिंदी में मनोवैज्ञानिक कथाधारा की शुरुआत सन् 1930 के आस-पास से मानी जाती है। जैनेन्द्र का 'परख' और इलाचन्द्र जोशी का 'घृणामयी'(लज्जा) इस कथा-धारा के प्राथमिक उपन्यास माने जाते हैं। इसके बाद तो हिंदी में इस तरह के उपन्यासों की बाढ़ सी आ गई। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी तथा अज्ञेय हिंदी की मनोवैज्ञानिक कथा-धारा के अग्रणी कथाकार माने जाते हैं। इन तीनों को मनोवैज्ञानिक कथाकार कहना तो काफी हद तक सही है, पर जब हमारे प्रबुद्ध समालोचक इन्हें 'मनोविश्लेषणवादी' खेमे में ला पटकते हैं तो यह बात अखरती है, क्योंकि मनोविज्ञान और मनोविश्लेषणवाद में बड़ा भारी अन्तर है और कम से कम एक समालोचक से यह उम्मीद की जाती है कि वो इन दोनों अवधारणाओं के बीच के अंतर को समझता होगा, पर अफसोस हमारे समालोचकों के पास इतना वक्त ही कहाँ कि वो इनके भेद पर गौर फरमा सकें और जो कथाकार मनोविश्लेषण की बजाय मनोविज्ञान की दूसरी शाखाओं से ज़्यादा प्रभावित रहे उन पर 'मनोविश्लेषणवादी' होने का तमगा जबरन न लगाया जाए। मिसाल के तौर पर जैनेन्द्र मनोविज्ञान की 'गेस्टॉल्ट' शाखा से ज़्यादा प्रभावित थे, साथ ही उन्होंने मनोविज्ञान को अपने जैन संस्कारों और गांधीवादी आदर्शों के साथ मिलाकर पेश किया, फिर भी हमारे आलोचक गण उन्हें पूरी तरह फ्रॉयडवादी घोषित करने में लगे रहते हैं, इसे सिवाय विवेकहीनता के और क्या कहा जाए?

जहाँ तक बात 'मनोविश्लेषण' की है तो इसका सर्वाधिक प्रयोग इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में दिखता है, लेकिन जोशी जी को भी फ्रॉयडवादी कहना ग़लत होगा क्योंकि उन्होंने फ्रॉयड के 'दमित. काम' से ज़्यादा एडलर के हीनता-ग्रंथि और युंग के 'सामूहिक अचेतन' सिद्धांतों का प्रयोग किया है, अतः इनके कथा-साहित्य को 'मनोविश्लेषण' की कोटि में तो रख सकते हैं, पर सिर्फ फ्रॉयडवाद को उन पर थोप देना जोशी जी की रचनात्मकता के साथ अन्याय होगा। अज्ञेय का 'शेखर: एक जीवनी' काफी हद तक फ्रॉयड के 'मनोवैज्ञानिक नियतिवाद' सिद्धांत से प्रभावित है, लेकिन उनका 'नदी के द्वीप' मनोविश्लेषण और अस्तित्ववाद का मिला-जुला रूप

है और 'अपने-अपने अजनबी' पूरी तरह अस्तित्ववाद से प्रेरित है। अब सवाल उठता है कि जब जैनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय तीनों ने ही अपने उपन्यासों में मनोविज्ञान को एकनिश्चयता से नहीं अपनाया तो फिर इन्हें मनोवैज्ञानिक कथाकार क्यों कहा जाता है? बात सरल है, बेशक ये कथाकार मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के पिछल्लगु न हो, पर इन तीनों की शैली 'मनोवैज्ञानिक' है। इनके सभी उपन्यास शुरू से आखिर तक 'मनोवैज्ञानिक शैली' में लिखे गए हैं। इसीलिए इन्हें मनोवैज्ञानिक कथा-धारा के कथाकारों में शुमार किया जाता है। इन तीनों के अलावा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, राजेन्द्र यादव, गिरधर गोपाल, यादवचन्द्र जैन, देवराज उपाध्याय, प्रभाकर माचवे, लक्ष्मीकांत वर्मा, राजकमल चौधरी आदि कथाकारों के उपन्यास भी मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित हैं। हिंदी की मनोवैज्ञानिक कथा-धारा के कुछ महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं—

संन्यासी (इलाचन्द्र जोशी)

ये जोशी जी का सर्वाधिक अहम् उपन्यास है, उनके इस उपन्यास को आम जनमानस और साहित्यिक जगत् दोनों में अभूतपूर्व लोकप्रियता और सफलता मिली। इसमें 'नन्दकिशोर' नाम के एक ऐसे युवक की कथा है जो अपने विकृत अहम् और दमित काम के चलते अपने जीवन में आने वाली नारियों 'शान्ति' और 'जयंती' के जज़्बातों और उनके स्वाभिमान को अपने पैरों तले कुचल देता है। 'नन्दकिशोर' का चरित्र विश्लेषण करते हुए प्रेम भटनागर लिखते हैं— “नन्द के रूप में पुरुष के अहम्वाद, स्वार्थ और ईश्यालु स्वभाव की समस्या मुँह बाये खड़ी है। नन्द की आत्मा इन दुर्गुणों के कारण अति पीड़ित है।..... नन्द का पतित जीवन उसकी दमित कामवासना का परिणाम है। उसमें विद्यमान अहम् उसकी समस्त ग्रंथियों का मूल है।”⁵ दमित-काम और अहम् नन्दकिशोर के व्यक्तित्व को खोखला कर देते हैं, नतीजतन वो अपने साथ-साथ अपने करीबियों का भी सर्वनाश कर बैठता है।

सुनीता (जैनेन्द्र)

जिस प्रकार 'संन्यासी' जोशी जी का सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास रहा है, उसी प्रकार 'सुनीता' जैनेन्द्र का विशेष ख्याति प्राप्त उपन्यास है। ऊपरी तौर पर इसमें एक त्रिकोणीय प्रेम कहानी दिखती है, पर गहराई में जाने पर ही पता लगता है कि नायक 'श्रीकांत' एक मनोवैज्ञानिक समस्या से आक्रांत है जिसे फ्रॉयडियन शब्दावली में 'आहत तृतीय पक्ष की आवश्यकता' कहा जाता है, इसमें व्यक्ति अपने प्रणयी के प्रति तब तक कामोद्दीप्त नहीं हो पाता जब तक उन दोनों के बीच कोई तीसरा व्यक्ति न आ जाए। इसी तीसरे व्यक्ति के रूप में 'हरिप्रसन्न' आता है जो खुद भी 'दमित. काम' से पीड़ित है। इन दोनों के बीच की धुरी है—सुनीता, जो हरिप्रसन्न के लिए काम्य है और श्रीकांत उसे अपने लिए काम्य बनाना चाहता है। अतः श्रीकांत और सुनीता के बीच 'हरिप्रसन्न' के आने के बाद 'सुनीता' श्रीकांत के लिए भी काम्य हो जाती है और सुनीता के प्रति हरिप्रसन्न की वासना का उन्नयन श्रद्धा में हो जाता है। इस प्रकार जैनेन्द्र बड़ी चालाकी से सुनीता के सतीत्व को बचाते हुए श्रीकांत और हरिप्रसन्न दोनों की मनोग्रंथियों का समाधान ढूँढ लेते हैं।

शेखर : एक जीवनी (अज्ञेय)

अज्ञेय का ये उपन्यास फ्रॉयड के मनोवैज्ञानिक नियतिवाद' सिद्धांत पर आधारित है जिसके मुताबिक 0.6 वर्ष की आयु तक बालक-बालिकाओं की अन्तःप्रकृति जो रूप ले लेती है वो उनके जीवन को उम्रभर प्रभावित करती है। उपन्यास का मुख्य पात्र 'शेखर' का परिवेश उसे बाल्यकाल में ही विद्रोही बना देता है और फिर उसका यही विद्रोही व्यक्तित्व उसकी जीवन नियति को निर्धारित करता है।

लेखक ने शेखर की विद्रोहात्मकता के लिए जो परिवेश गढ़ा उसकी सटीकता पर टिप्पणी करते हुए डॉ.रणवीर रांग्रा लिखते हैं— “शेखर के भीतर विद्रोह बीज के पनपने के लिए आवश्यक था कि उसके माता-पिता अनमेल स्वभाव के होते और वे दोनों बाल मनोविज्ञान से अपरिचित होते। शेखर के पिता आवेश में आततायी थे, माँ आवेश की कमी के कारण निर्दय.....इन प्रकृतियों के मेल और संघर्ष में ही शेखर का पालन-पोषण हुआ था।”⁶ पिता की अनावश्यक कठोरता और माता की संवेदनहीनता बालक शेखर के व्यक्तित्व के सामान्य विकास में बाधा बन जाती है और शेखर अपने परिवेश के प्रति विद्रोही हो उठता है। वस्तुतः उसकी विद्रोही प्रकृति के मूल में उस स्नेहमयी वातावरण का अभाव है जिसके लिए वो जीवनभर तरसता रहा और जिसकी निरर्थक खोज उसे उसकी नियति के चरम तक पहुँचा देती है।

सोया हुआ जल (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना)

सक्सेना जी का लगभग 50 पृष्ठों का ये लघु उपन्यास फ्रॉयड के सिद्धांतों से इस कदर प्रभावित है मानों उन सिद्धांतों को मूर्त रूप देने के लिए ही कथा की रचना की गई है। उपन्यास फ्रॉयड की ‘अचेतन मन’ की अवधारणा पर आधारित है। उपन्यास के चारों प्रमुख पात्रों—राजेश, विभा, किशोर, रत्ना के अचेतन मन में उनकी अवांछित इच्छाएँ दबी हुई हैं जो रात में सोते समय उनके स्वप्नों में अभिव्यक्ति पाती हैं। राजेश के अचेतन में किसी गोरी फिरंग लड़की को पाने की कामना है, तो विभा राजेश की पत्नी होते हुए भी आज तक अपने विवाहपूर्व प्रेमी मोहन को चाहती है, उसकी यही दबी चाहत उसके स्वप्न में झलकती है। इसी प्रकार किशोर के मन में अपनी भाभी विभा के प्रति यौनाकर्षण है, तो रत्ना के अचेतन में उसके बुर्जुवा संस्कार जमे हुए हैं। उपन्यास का समस्त कलेवर प्रमुख और गौण पात्रों की अचेतन कामनाओं के चित्रण में ही सिमट गया है और पात्रों की अचेतन कामनाओं की अभिव्यक्ति का मार्ग रहा है—उनके स्वप्न, इसीलिए उपन्यास में एक के बाद एक स्वप्न-चित्रण की झड़ी-सी लग गई है।

अनदेखे अनजान पुल (राजेन्द्र यादव)

यादव जी का ये उपन्यास फ्रॉयड के ‘दमित-काम’ और एडलर के ‘हीनता-ग्रंथि’ सिद्धांतों पर आधारित है। उपन्यास में ‘निन्नी’ नाम की एक लड़की की कथा है जो कुरूप है। अपनी कुरूपता और लोगों के दुर्व्यवहार के कारण निन्नी में एक तरफ आत्महीनता की भावना एक ग्रंथि का रूप ले चुकी है, दूसरी तरफ विवाह न हो पाने के कारण वो भीतर-ही-भीतर पुरुष-संसर्ग के लिए छटपटाती है यानि उसके अन्तर्मन में दमित वासना भी ढेरा जमाए है। अपनी हीन भावना के कारण वो सबसे छुपी रहना चाहती है। “उसमें अपनी हीनताभूति के प्रति बद्धत्व है और वह तिलचट्टे की कुरूप मूँछों में अपने कालेपन को देखती है।”⁷ निन्नी का कालापन उसके मन का गहरा अन्धेरा बन चुका था और वो सबकी उपेक्षा को अपनी नियति मान चुकी थी, लेकिन दर्शन उसे एहसास दिलाता है कि सुन्दरता कोई बाहरी वस्तु नहीं ये तो मन के भीतर का एक भाव है, बाहरी सुन्दरता तो नश्वर है, जो शाश्वत है वो मन की भीतर की सुन्दरता। दर्शन की इन बातों से निन्नी के मन की गाँठें खुल जाती हैं और उसके भूले-भटके जीवन को नई दिशा मिल जाती है। यों तो हिंदी कथा-धारा पर मनोविज्ञान का प्रभाव काफी हद तक सकारात्मक रहा, प्रेमचन्द युग तक कथाओं में जिस मनोवैज्ञानिकता की कमी थी, वो इस काल में पूरी तरह चुक गई, लेकिन कुछ कथाकारों ने फ्रॉयड के सिद्धांतों को साहित्य में एक खेल बना दिया और कुछ फुहड़ उपन्यास लिख डाले। ऐसा ही एक उपन्यास है राजकमल चौधरी का ‘मछली मरी हुई’। इस उपन्यास में फ्रॉयड की

‘समलैंगिकता’ की अवधारणा को जिस रूप में दिखाया गया है वो तो खुद फ्रॉयड को भी अचरज में डाल दे। इतना ही नहीं राजकमल जी ने एडलर को भी नहीं बक्शा, उनके द्वारा प्रतिपादित ‘हीनता-ग्रंथि’ की समस्या का जो समाधान दिखाया गया है, वो स्वयं एडलर को भी सकते में डाल दे। उपन्यास में तीन प्रमुख पात्र हैं—निर्मल, शीरी और प्रिया। शीरी जन्मजात समलैंगिक नहीं है, पर स्थितिवाश बन गई है और प्रिया को भी समलैंगिक मैथुन की लत लगा देती है। निर्मल में पुरुशत्व संबंधी आत्महीनता का गहरा भाव है। यहाँ तक तो फिर भी बात समझ में आती है, इसके बाद तो राजकमल चौधरी फ्रॉयड और एडलर को पीछे छोड़ते हुए समलैंगिकता और पुरुशत्व संबंधी हीनता का एक मात्र समाधान ‘बलात्कार’ दिखाते हैं। आदमी में अगर अपने पुरुशत्व को लेकर आत्महीनता है तो उसे बलात्कार करना चाहिए जैसा कि ‘निर्मल’ बाबू करते हैं और अगर स्त्री को समलैंगिक मैथुन की लत लग चुकी हो तो उसकी ये लत छुड़ाने के लिए पुरुष द्वारा उसका बलात्कार होना चाहिए जैसा कि ‘प्रिया’ को नार्मल बनाने के लिए निर्मल बाबू करते हैं, ऐसा होने पर निर्मल और प्रिया दोनों सामान्य हो जाते हैं, दोनों को अपनी काम-संबंधी समस्याओं से छुटकारा मिल जाता है। उपन्यास वीभत्स यौन-चित्रणों से ऐसा लबालब भरा हुआ है कि अच्छे-भले आदमी को भी उबकाई आने लगे। किसी भी सिद्धांत या विशय का इस प्रकार दुरुपयोग करके कृति के नाम पर जब अश्लीलता परोसी जाती है तो खुद रचनाकार की मानसिकता पर सन्देह होने लगता है। बहरहाल, तसल्ली की बात ये है कि इस सलीके की रचनाएँ ज्यादा नहीं हैं।

इन सबके अलावा भी हिंदी मनोविज्ञान से प्रभावित कई उपन्यास सामने आए। देवराज का ‘अजय की डायरी’, ‘पथ की खोज’, ‘बाहर-भीतर’, उपेन्द्रनाथ अशक का ‘शहर में घूमता आईना’, धर्मवीर भारती का ‘गुनाहों का देवता’, लक्ष्मीकांत वर्मा का ‘एक कटी हुई जिंदगी : एक कटा हुआ कागज’, राजेन्द्र यादव का ‘कुल्टा’, चतुरसेन शास्त्री का ‘पत्थर युग के दो बुत’, प्रभाकर माचवे का ‘द्वामा’, नरेश मेहता का ‘दो एकांत’, मोहन राकेश का ‘अंधेरे बंद कमरे’, गिरधर गोपाल का ‘चांदनी के खण्डहर’, यादवचन्द्र जैन का ‘पत्थर-पानी’, अनंत गोपाल शेवडे का ‘निशागीत’, ‘मृगजल’, लक्ष्मीनारायण लाल का ‘काले फूल का पौदा’, इन्द्र विद्यावाचस्पति का ‘अपराधी कौन’, रमेश बख्शी का ‘बैसाखियों वाली इमारतें’, भारतभूषण अग्रवाल का ‘लौटती लहरों की बांसुरी’ कुछ ऐसे ही उपन्यास हैं जिनका या तो वस्तुपक्ष या फिर शिल्प मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों या पद्धतियों से प्रभावित रहा है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में खासतौर पर प्रेमचन्दोत्तर युग में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की एक सशक्त परंपरा देखी जा सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. हिंदी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य : प्रेम भटनागर, संस्करण, 1968, 16.
2. वही, पृष्ठ 18.22.
3. आधुनिक हिंदी कथा.साहित्य और मनोविज्ञान : देवराज उपाध्याय, संस्करण, 1964, 304.
4. वही, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 02.
5. इलाचन्द्र जोशी: साहित्य और समीक्षा: प्रेम भटनागर, संस्करण 1959, 91-92.
6. मनोवैज्ञानिक हिंदी उपन्यास की बृहत्त्रयी : डॉ.रणवीर रांग्रा, प्रथम संस्करण, 135.
7. हिंदी के मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास : डॉ. कमलेश अग्रवाल, प्रथम संस्करण, 93.